विद्ययाऽमृतमश्नुते

साहित्य

* बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का सम्मिलित शोध-समीक्षा-प्रधान त्रैमासिक मुखपत्र *

वर्ष ७ : अंक ४ | पौष, संवत् २०१३ : : जनवरी, १९५७ ई० | (वार्षिक ७) : एक प्रति २)

सम्पादक

शिवपूजन सहाय : : नलिनविलोचन शर्मा

सहकारी

श्रीरंजन सूरिदेव

सम्पादकीय

मूल पाणिनीय शिक्षा :
सूत्रात्मक अथवा श्लोकात्मक ?

श्री युधिष्ठिर मीमांसक, प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, दिल्ली

दो प्रकार की पाणिनीय शिक्षा : पाणिनीय शिक्षा के दो प्रकार के ग्रन्थ इस समय उपलब्ध हैं। एक है श्लोकात्मक और दूसरा सूत्रात्मक। श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा ही चिरकाल से पठन-पाठन में व्यवहृत हो रही है। सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा का पठन-पाठन न होने से यह प्रायः उत्सन्न हो चुकी है। इस सूत्रात्मक शिक्षा का एकमात्र खण्डित हस्तलेख स्वामी दयानन्द को प्राप्त हुआ था, जिसे उन्होंने हिन्दी-व्याख्यासहित वर्णोच्चारण-शिक्षा के नाम से सं० १९३६ में प्रकाशित किया था।[1]

---

१. इस सूत्रात्मक पाणिनीय वर्णोच्चारण-शिक्षा और इसकी व्याख्या के विशेष परिचय के लिए देखिए मेरा 'स्वामी दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों का इतिहास।'

Made with Xodo PDF Reader and Editor

प्रो० मनोमोहन घोष ने उक्त ग्रन्थ को, श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के विभिन्न पाठों और उसकी दो टीकाओं के साथ, सम्पादित किया है और कलकत्ता-विश्वविद्यालय से, सन् १९३८ ई० में प्रकाशित कराया है।[1] ग्रन्थ के आरम्भ में घोष जी ने पाणिनीय शिक्षा शीर्षक एक अँगरेजी-भाषा-निबद्ध लेख लिखा है।

घोष जी की दो स्थापनाएँ : घोष जी के उपर्युक्त विवेचन में दो भाग हैं। पूर्व भाग में घोष जी ने श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा को पाणिनि-विरचित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, और उत्तर भाग में स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा को स्वामी दयानन्द द्वारा कल्पित सिद्ध करने की चेष्टा की है।

हम इस लेख में घोष जी की उक्त दोनों स्थापनाओं की सप्रमाण समालोचना करेंगे, जिससे पाठकों को वस्तुस्थिति का ज्ञान हो जाय।

श्लोकात्मक शिक्षा का प्रथम श्लोक : घोष जी के लेख की समालोचना करने के पूर्व हम श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के प्रथम श्लोक के पूर्वार्द्ध की ओर विचारशील पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते हैं। वह पूर्वार्द्ध इस प्रकार है :

'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा।'

अर्थात्—अब मैं शिक्षा को कहूँगा, पाणिनीय मत के अनुसार।

इस वचन से स्पष्ट है कि जिस श्लोकात्मक शिक्षा का यह प्रथम वचन है, वह शिक्षा पाणिनि द्वारा साक्षात् कही हुई नहीं है। पाणिनि से भिन्न किसी अन्य व्यक्ति ने पाणिनीय मतानुसार इस शिक्षा की रचना की है।

प्रकाश-टीकाकार का मत : इस श्लोकात्मक शिक्षा पर एक 'शिक्षा-प्रकाश' नाम की टीका (जिसका प्रकाशन घोष जी ने इसी ग्रन्थ में किया है) उपलब्ध है। टीका के रचयिता का नाम अज्ञात है, परन्तु घोष जी के मतानुसार यह 'प्रकाश' टीका सन् १३०० ई० से अर्वाचीन नहीं है।[2] इस टीका में उक्त श्लोक की व्याख्या में लिखा है—

'ज्येष्ठभ्रातृभिर्विहितो व्याकरणे अनुजस्तत्र भवान् पिङ्गलाचार्यः तन्मतमनुभाव्य शिक्षां वक्तुं प्रतिजानीते—अथ शिक्षामिति।'

---

१. इस ग्रन्थ में घोष जी ने प्रथम पाणिनीय शिक्षा का स्वयम्-ऊहित मूल पाठ छापा है। उसमें केवल १८ श्लोक हैं। तदनन्तर अग्निपुराणान्तर्गत शिक्षा-श्लोक मुद्रित हैं। ये संख्या में २१ हैं। इसके पीछे पञ्जिका-व्याख्या और उसके आधार पर ऊहित मूल पाठ दिया है। इसमें २३ श्लोक हैं। तत्पश्चात् शिक्षा-प्रकाश टीका और उसके आधार पर ऊहित मूल पाठ प्रकाशित किया है। तदनन्तर पाणिनीय शिक्षा का ३५ श्लोकात्मक यजुःशाखीय और ६० श्लोकात्मक ऋक्शाखीय पाठ दिया है। सबसे अन्त में चान्द्रवर्ण सूत्र हैं।

२. हमारे विचार में इस टीका के रचयिता का नाम यादव प्रकाश है।

अर्थात्, ज्येष्ठ भाई पाणिनि द्वारा व्याकरण में कथित मत को जानकर उसका अनुज पिङ्गलाचार्य शिक्षा कहने की प्रतिज्ञा करता है : अथ शिक्षामिति।

इस वचन से स्पष्ट है कि शिक्षा-प्रकाश टीकाकार के मत में इस पाणिनीय शिक्षा का रचयिता आचार्य पिङ्गल है, पाणिनि नहीं।

अब पाठक स्वयं इस बात का निर्णय करें कि जब उक्त श्लोकात्मक शिक्षा का लेखक और उसका प्राचीन टीकाकार ही इसे पाणिनि-विरचित नहीं कहते हैं, तब घोष जी का इसको पाणिनि-विरचित सिद्ध करने के लिए हाथ-पैर मारना 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त' आभाणक को स्मरण कराता है।

घोष जी का दुस्साहस : इस श्लोकात्मक शिक्षा के यजुःशाखीय और ऋक्शाखीय लघु तथा बृहत् पाठ और इसकी जो दो टीकाएँ उपलब्ध होती हैं, उनके सभी लेखों में उक्त प्रथम श्लोक असन्दिग्ध रूप से पठित है। इतना होने पर भी घोष जी ने इस शिक्षा का जो स्वकल्पित मूलपाठ सर्वप्रथम छापा है, उसमें इस श्लोक को स्थान नहीं दिया। वे जानते थे कि इस श्लोक के रहते हुए इस शिक्षा को किसी भी प्रकार पाणिनीय सिद्ध नहीं किया जा सकता। अतः, उन्होंने इस श्लोक का बहिष्कार करना ही श्रेयस्कर समझा। घोष जी की इस अनधिकार चेष्टा को दुःसाहस अथवा दुराग्रह के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है?

घोष जी के पाणिनीय साधक हेतुओं की समीक्षा

अब हम घोष जी के उन हेतुओं को उपस्थित करते हैं, जिनके बल पर घोष जी ने इस कल्पित ग्रन्थ को पाणिनि-रचित सिद्ध करने की चेष्टा की है।

प्रथम हेतु : 'यह निश्चय है कि शिक्षा के छन्द बृहद्देवता के छन्द (४०० ईसा-पूर्व) से कम पुराने नहीं हैं।'

समीक्षा : यह केवल प्रतिज्ञा है, हेतु नहीं। हेतु वह होता है जो वक्ता के पक्ष का पोषक हो। विना हेतु और उदाहरण के प्रतिज्ञामात्र से किसी पक्ष की सिद्धि नहीं होती। इतना ही नहीं, केवल छन्दोरचना के आधार पर किसी ग्रन्थ के काल के निर्णय का प्रयत्न करना अवैज्ञानिक मार्ग है। इस प्रकार अवैज्ञानिक मार्ग का अनुसरण वे ही किया करते हैं, जिन्हें अपनी कल्पनाओं की सिद्धि में कोई प्रमाण नहीं मिलता और जो अपनी असत्य कल्पनाओं को संसार के मत्थे मढ़ना चाहते हैं। इसी अवैज्ञानिक मार्ग पर चलकर योरोपीय विद्वानों ने पाणिनि-विरचित 'पाताल-विजय' अपर नाम 'जाम्बवती-विजय' को अपाणिनीय सिद्ध करने का दुःसाहस किया है।[1]

उसने छन्दः सूत्र की भी व्याख्या रची है (इसके हस्तलेख उपलब्ध हैं)। इस टीका के प्रारम्भिक श्लोक में भी इस बात का संकेत है। अतः इसका काल सन् ११००-११५० ई० के मध्य में है।

१. देखें मेरा 'संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास', प्रथम भाग।

इतना ही नहीं, घोष जी ने उक्त लेख में तीन भयंकर भूलें की हैं। उनसे विदित होता है कि घोष जी को भारतीय प्राचीन इतिहास का कुछ भी ज्ञान नहीं है। यथा :

पहली भूल : बृहद्देवता का रचयिता वही बह्वृचसिंह कुलपति शौनक है, जो अथर्व शौनिक संहिता, ऐतरेयारण्यक के पञ्चम आरण्यक और ऋक् प्रातिशाख्य का प्रवक्ता तथा ऐतरेय ब्राह्मण का प्रतिसंस्कर्ता है। यह कुलपति शौनक भारत-युद्ध का समकालिक है। उसका काल किसी भी अवस्था में २६०० विक्रम पूर्व से अर्वाचीन नहीं है।[1] उस शौनक के बृहद्देवता को केवल मैकडानल्ड के प्रमाण से ४०० ईसा-पूर्व मान लेना[2] सर्वथा चिन्त्य है।

पाश्चात्त्य विद्वानों द्वारा भारतीय प्राचीन इतिहास का नाश

मैक्समूलर तथा मैकडानल्ड प्रभृति योरोपियन विद्वानों ने सहस्रों वर्ष प्राचीन अनवच्छिन्न भारतीय इतिहास को ईसाइयत के पक्षपात तथा राजनीतिक कारणों से जान-बूझ कर तोड़-मरोड़ कर अधिक-से-अधिक २००० ईसा-पूर्व के अन्तर्गत लाने की दुश्चेष्टा की है।[3] घोष जी भारतीय हैं। वे यत्न करने पर भारतीय परम्परा को भले प्रकार समझ सकते थे, परन्तु उन्होंने उसे समझने की चेष्टा न कर बलात् प्रवर्तित योरोपियन मिथ्या विचारों का अनुसरण ही श्रेयस्कर समझा।

दूसरी भूल : घोष जी ने जोश में आकर जिस कारण इस कल्पित पाणिनीय शिक्षा को शौनक-विरचित बृहद्देवता से प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा की, उसे लिखते समय वे भूल गये कि स्वयं पाणिनि अपनी अष्टाध्यायी ४।३।१०६ में उस कुलपति शौनक को स्मरण कराता है, जिसने बृहद्देवता का प्रवचन किया है। जब बृहद्देवता का रचयिता पाणिनि से पूर्वभावी है, तब भला पाणिनीय शिक्षा शौनक-विरचित बृहद्देवता से प्राचीन कैसे हो सकती है ?

तीसरी भूल : यदि यह भी मान लिया जाय कि 'इस शिक्षा के छन्द बृहद्देवता के छन्द से कम पुराने नहीं हैं, तो इससे यह कैसे सिद्ध होगा कि यह श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनि-रचित है। यदि यह व्याप्ति होती कि 'जो-जो ग्रन्थ बृहद्देवता से प्राचीन हैं वे-वे पाणिनि-रचित हैं' तभी घोष जी उक्त कथन से श्लोकात्मक शिक्षा को पाणिनि-रचित सिद्ध कर सकते थे।

द्वितीय हेतु : 'शबर (मीमांसा १।१।२२) और भर्तृहरि (१।४७) को शिक्षा ज्ञात थी।'

समीक्षा : यदि घोष जी का अभिप्राय शिक्षा-सामान्य से है, अर्थात् शबर और

---

१. देखें 'संस्कृत-व्याकरण-शास्त्र का इतिहास', प्रथम भाग।

२. बृहद्देवता, मैकडानलड-संस्करण की भूमिका, पृष्ठ २२-२३।

३. पं० भगवद्दत्त जी कृत 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' भाग १। भारतीय इतिहास की विकृति के कारण, अध्याय ३, पृष्ठ ३५—४२ तथा उन्हीं की पुस्तक Western indologists।

भर्तृहरि शिक्षा-शास्त्र से परिचित थे, तो इस लेख से लेखक का अभिप्राय (श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनि-रचित है) किञ्चिन्मात्र भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि शबर और भर्तृहरि के शिक्षा-शास्त्र से परिचित होने मात्र से यह कैसे सिद्ध हो सकता है कि यह श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनि-रचित है ? शिक्षा-सामान्य का निर्देश तो शबर और भर्तृहरि के सहस्रों वर्ष पूर्वभावी गोपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यकान्तर्गत उपनिषद् में भी विद्यमान है।

यदि उक्त वाक्य में घोष जी का अभिप्राय श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा से है, अर्थात् शबर और भर्तृहरि इस श्लोकात्मक शिक्षा को पाणिनि-विरचित मानते थे, तो कहना पड़ेगा कि घोष जी ने दोनों आचार्यों का मिथ्या साम्य उपस्थित किया। मीमांसा-भाष्य १।१।२२ में शबर स्वामी का वचन इस प्रकार है :

'शिक्षाकारा आहुः—वायुरापद्यते शब्दतामिति।'

इस प्रसङ्ग में शबर स्वामी ने किसी व्यक्तिविशेष के नाम का निर्देश नहीं किया, केवल 'शिक्षाकाराः' ऐसा सामान्य निर्देश किया है। शबर स्वामी-निर्दिष्ट वचन इस श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के किसी पाठ में उपलब्ध नहीं होता। यदि उक्त वचन इस श्लोकात्मक शिक्षा में मिल जाता, तब भी कुछ कल्पना की जा सकती थी।

दूसरा नाम घोष जी ने भर्तृहरि का लिखा है; उन्होंने पादटिप्पणी में वाक्यपदीय (१।४७) का जो श्लोक उद्धृत किया है, वह इस प्रकार है :

"वितर्कितः पुरा बुद्ध्या क्वचिदर्थे निवेशितः।
करणेभ्यो विवृत्तेन ध्वनिना सोऽनुगृह्यते॥[१]"

इस श्लोक में शिक्षा का कोई प्रसङ्ग नहीं है, न शिक्षा शब्द का ही निर्देश है। हां, पाणिनीय शिक्षा के 'आत्माबुद्ध्या' श्लोक का अभिप्राय इससे कुछ मिलता है। इस किंचित् अर्थसाम्य से यह नहीं कहा जा सकता कि भर्तृहरि इस श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा से परिचित थे।

अब हम भर्तृहरि का वह स्थल उपस्थित करते हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि भर्तृहरि इस श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा से परिचित थे।

वाक्यपदीय १।११६ की स्वोपज्ञ व्याख्या में भर्तृहरि ने 'आचार्यः खल्वप्याह' कह कर 'आत्माबुद्ध्या' श्लोक उद्धृत किया है। यह श्लोक श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा तथा अग्निपुराणान्तर्गत शिक्षा-प्रकरण में उपलब्ध होता है। इस प्रसङ्ग में भर्तृहरि ने अनेक शिक्षाकारों के मत उद्धृत किये हैं। 'आत्माबुद्ध्या' श्लोक को उद्धृत करते समय भर्तृहरि ने किसी व्यक्ति का नाम नहीं लिखा, अतः यह निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता कि यहाँ भर्तृहरि को आचार्य शब्द से कौन व्यक्ति अभिप्रेत है। पुनरपि, इससे इतनी

---

१. वाक्यपदीय, स्वोपज्ञव्याख्या-सहित, लाहौर-संस्करण में यह श्लोक १।४८ पर मिलता है।

कल्पना कथंचित् अवश्य की जा सकती है कि यह श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा भर्तृहरि से प्राचीन है और भर्तृहरि उससे परिचित था।

तृतीय हेतु : 'मधुसूदन सरस्वती और पराशर-शिक्षा के लेखक इसे पाणिनि-कृत मानते हैं।'

समीक्षा : मधुसूदन सरस्वती अभी १७ वीं शती पूर्वार्द्ध के हैं; उनकी अपेक्षा तो इस शिक्षा के दोनों अज्ञातनामा टीकाकार कहीं अधिक प्राचीन हैं। अतः, मधुसूदन सरस्वती द्वारा इस शिक्षा का उल्लेख होना कोई महत्त्व नहीं रखता।

अब रहा पराशर-शिक्षा का प्रमाण। पराशर-शिक्षा के विषय में अभी यह साध्य है कि वह किस काल की रचना है। घोष जी ने भी इसके रचनाकाल का कोई निर्देश नहीं किया। वह पराशर-शिक्षा कृष्ण द्वैपायन के पिता महर्षि पराशर की कृति नहीं है। यह निश्चित है, क्योंकि इस शिक्षा में पराशर से बहुत उत्तर-काल में होनेवाले याज्ञवल्क्य, पाणिनि, कात्यायन और माध्यन्दिन आदि का उल्लेख है। यदि इतना मान भी लें कि यह पराशर-शिक्षा पराशर मुनि-प्रोक्त ही है, तब भी इतना ही सिद्ध होगा कि पराशर-शिक्षा के प्रवचन-काल में पाणिनि की कोई शिक्षा प्रसिद्ध थी। यह श्लोकात्मक पाणिनि-शिक्षा पराशर-शिक्षा से पुरानी है, यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकता, क्योंकि पराशर-शिक्षा में इस श्लोकात्मक पाणिनि-शिक्षा का कोई श्लोक अथवा श्लोकांश उद्धृत नहीं। इस प्रकार घोष जी का यह तीसरा हेतु भी उनके पक्ष का पोषण नहीं करता।

चतुर्थ हेतु : 'शुक्रनीतिकार भी इसे जानता था।'

इसके प्रमाण में घोष जी ने पाद-टिप्पणी में शुक्रनीति का निम्नमुद्रित श्लोक उद्धृत किया है :

"स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः।
सवनाद्यैश्च सा शिक्षा वर्णानां पाठशिक्षणात्॥"

समीक्षा : उक्त श्लोक शुक्रनीति में कहाँ आया है, इसका निर्देश घोष जी ने नहीं किया। अस्तु, यह पद्य शुक्रनीति के चतुर्थाध्याय के तृतीय प्रकरण में शिक्षा-अङ्ग के वर्णन में (सं० ४१) मिलता है। शुक्रनीति में यहाँ शिक्षा नामक अङ्ग का सामान्य वर्णन है। इस पद्य का पूर्वार्द्ध श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा में उपलब्ध होता है। इसी बल पर घोष जी ने इस शिक्षा को शुक्रनीति से प्राचीन सिद्ध करने की चेष्टा की है। ध्यान रहे कि यह पद्यांश अग्निपुराणान्तर्गत शिक्षा-प्रकरण में भी विद्यमान है। अतः, केवल अर्ध श्लोक के तीनों स्थानों पर उपलब्ध हो जाने मात्र से यह नहीं कहा सकता कि श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा शुक्रनीति से प्राचीन है।

पंचम हेतु : 'पाणिनीय शिक्षा और अष्टाध्यायी दोनों एक की कृतियाँ हैं, यह सिद्ध किया जा सकता है।'

समीक्षा : यह केवल प्रतिज्ञा है, प्रतिज्ञामात्र से किसी पक्ष की सिद्धि नहीं होती

घोष जी ने श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा और अष्टाध्यायी को एक व्यक्ति की सिद्ध करने के लिए दोनों ग्रन्थों की कोई तुलना प्रदर्शित नहीं की।

श्लोकात्मक शिक्षा और अष्टाध्यायी एक की कृति नहीं

घोष जी की प्रतिज्ञा के विपरीत हमारा मत है कि इस श्लोकात्मक शिक्षा के उच्चारण-सम्बन्धी मत अष्टाध्यायी से बहुत विरोध रखते हैं। उदाहरण के लिए हम कतिपय प्रमाण उपस्थित करते हैं :

(क) घोष जी ने इस पाणिनीय शिक्षा के विभिन्न पाठों के आधार पर जो स्वकल्पित मूलपाठ उपस्थित किया है, उसमें एक श्लोक इस प्रकार है :

"अचोऽस्पृष्टा यणस्त्वीषत् नेमस्पृष्टा शलस्तथा।
शेषाः स्पृष्टा हलः प्रोक्ता निबोधानुप्रदानतः ॥"

अर्थात्, अचों (स्वरों) का अस्पृष्ट अभ्यन्तर-प्रयत्न है। यणों (=अन्तःस्थों) का ईषत्स्पृष्ट, शलों (ऊष्मों) का अर्धस्पृष्ट और शेष हलों (=व्यञ्जनों) का स्पृष्ट-प्रयत्न है।

इस श्लोक के अनुसार अचों का अस्पृष्ट और शलों का अर्धस्पृष्ट-प्रयत्न होने से अचों और ऊष्मों की परस्पर सवर्ण संज्ञा प्राप्त ही नहीं होती। सवर्ण संज्ञा के लिए उच्चारण-स्थान और अभ्यन्तर-प्रयत्न का सामान्य होना आवश्यक है।[1]

इस शिक्षा के अनुसार अचों और ऊष्मों के आभ्यन्तर प्रयत्न में भिन्नता होने के कारण जब दोनों की परस्पर सवर्ण संज्ञा प्राप्त ही नहीं होती, तब ह की अ के साथ, श की की इ के साथ, ष की ऋ के साथ और स की ऌ के साथ परस्पर सवर्ण संज्ञा के निषेध के लिए पाणिनि का 'नाज्झलौ' (अ० १।१।१०) सूत्र बनाना ही व्यर्थ है। 'नाज्झलौ' सूत्र के निर्माण से स्पष्ट ही है कि पाणिनि के मत में ऊष्मों और अचों के आभ्यन्तर प्रयत्न समान हैं। इससे यह व्यक्त है कि श्लोकात्मक शिक्षा पाणिनि-रचित नहीं है।

इस पाणिनीय शिक्षा के ऋक्शाखीय और यजुःशाखीय पाठ में एक श्लोक और मिलता है (शिक्षाप्रकाश-टीका में वह व्याख्यात है)। वह है :

"स्वराणामूष्मणां चैव विवृतं करणं स्मृतम्।
तेभ्योऽपि विवृतावेङौ ताभ्यामैचौ तथैव च ॥"

इस श्लोक के अनुसार स्वरों और ऊष्मों का विवृत-प्रयत्न है। दोनों का विवृत-प्रयत्न मानने पर यद्यपि अष्टाध्यायी का 'नाज्झलौ' सूत्र संगत हो जाता है, परन्तु यह श्लोक वस्तुतः इस शिक्षा का अंग है, यही अभी साध्य है। इस श्लोक के प्रक्षिप्त होने के निम्नांकित कारण हैं :

(१) यह श्लोक इस शिक्षा के सम्पूर्ण पाठों में उपलब्ध नहीं होता। पञ्जिका

---

१. इस सम्बन्ध में 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' (अ० १।१।९) पाणिनीय सूत्र तथा इसके व्याख्यान ग्रन्थ-द्रष्टव्य हैं।

नामक व्याख्या के रचयिता ने भी इस श्लोक की व्याख्या नहीं की। इन्ही कारणों से स्वयं घोष जी ने भी अपने मूलपाठ में इस श्लोक को स्थान नहीं दिया।

(२) इस शिक्षा के ऋक्पाठ में 'स्वराणामूष्मणां चैव' (२१) और 'अचोऽस्पृष्टाः' (३८) इन दोनों आभ्यन्तर प्रयत्नप्रतिपादक श्लोकों के मध्य में १६ श्लोक ऐसे हैं जो अप्रासङ्गिक हैं। अप्रासङ्गिक श्लोकों के व्यवधान से शिक्षा का पाठ ही सन्दिग्ध है। पाठ के सन्दिग्ध होने से कोई निस्सन्दिग्ध परिणाम नहीं निकाला जा सकता।

(३) इस शिक्षा के यजुःशाखीय पाठ तथा प्रकाश टीका में यद्यपि दोनों 'स्वराणामूष्मणां' तथा 'अचोऽस्पृष्टाः' श्लोक साथ-साथ पढ़े हैं, पुनरपि दोनों श्लोकों की उपस्थिति में एक सन्देह और होता है कि स्वरों और ऊष्मों का प्रयत्न विवृत है अथवा अस्पृष्ट और नेमस्पृष्ट। यदि 'अचोऽस्पृष्टाः' पदों को अस्पृष्ट-प्रयत्न का विधायक न मानकर 'अच् स्पृष्ट-प्रयत्नवाले नहीं होते' इस प्रकार पूर्व श्लोकप्रतिपादक अर्थ का अनुवाद मानें, तब भी एक सन्देह तो रह ही जाता है कि ऊष्मों का विवृत-प्रयत्न माना जाय अथवा नेम-स्पृष्ट=अर्धस्पृष्ट। स्वरों का विवृत और ऊष्मों का नेमस्पृष्ट-प्रयत्न होने पर दोनों की सवर्ण संज्ञा नहीं होगी, पुनः 'नाज्झलौ' सूत्र की व्यर्थता तदवस्थ ही है।

(ख) इस शिक्षा के मतानुसार ह्रस्व 'अ' का अस्पृष्ट अथवा विवृत-प्रयत्न है [देखें पूर्वोद्धृत दोनों श्लोक]। परन्तु, पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा पातञ्जल महाभाष्य से स्पष्ट है कि पाणिनि ह्रस्व 'अ' का मूलतः संवृत-प्रयत्न मानता है। संवृत प्रयत्न होने पर दीर्घ और प्लुत अवर्ण के साथ ह्रस्व अ की सवर्ण संज्ञा प्राप्त नहीं होती, अतः पाणिनि ने स्वशास्त्रीय कार्य-निर्वाहार्थ 'अइउण्' सूत्र में उसका विवृत-उपदेश किया है और शास्त्र के अन्त में 'अ-अ' सूत्र द्वारा प्रथम विवृत-उपदिष्ट ह्रस्व अ को पुनः संवृत किया है।[1] यदि पाणिनि के मत में ह्रस्व अ स्वभावतः विवृत होता तो पाणिनि प्रथम सूत्र में उसका विवृत-उपदेश और अन्तिम सूत्र में पुनः उसका संवृत-विधान न करता।

यदि यह कहा जाय कि शिक्षा में व्याकरणशास्त्र के कार्यनिर्वाहार्थ ही ह्रस्व अ को विवृत कहा है, तो भी अयुक्त है। क्योंकि, शिक्षा स्वतन्त्र वेदाङ्ग है। वह स्वतन्त्र रूप से वर्णों के उच्चारण की शिक्षा देता है। शिक्षा के लोकवेदसाधारण होने से उसमें ह्रस्व अ का संवृत प्रयत्न ही कहना चाहिए। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने भी स्पष्ट लिखा है:

'नैव लोके न च वेदेऽकारो विवृतोऽस्ति। कस्तर्हि? संवृतः।' (अइउण् सूत्र)

हां, अधिक-से-अधिक शिक्षा में यह कहा जा सकता था कि ह्रस्व अ का स्वाभाविक प्रयत्न संवृत है, परन्तु पाणिनीय व्याकरणशास्त्र में कार्यनिर्वाहार्थ इसे विवृत माना है। किन्तु, सम्पूर्ण पाणिनीय शिक्षा में ह्रस्व अ के वास्तविक संवृत-प्रयत्न का उल्लेख ही नहीं किया गया। इससे इस शिक्षा के किसी शिक्षा-शास्त्रज्ञ द्वारा रचित होने में भी सन्देह है।

---

१. 'अइउण्' सूत्र का महाभाष्य।

(ग) इस शिक्षा के ऋक्शाखीय पाठ में एक श्लोक इस प्रकार है :

"संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु द्विमात्रिकम्।
घोषा वा संवृताः सर्वे अघोषा विवृताः स्मृताः ॥"

अर्थात्, एक मात्रावाले वर्ण संवृत-प्रयत्नवाले होते हैं और द्विमात्रिक विवृत-प्रयत्नवाले।

यदि इस श्लोक में ह्रस्व अकार के संवृत-प्रयत्न का विधान माना जाय तो इसमें निम्नांकित आपत्तियाँ हैं :

(१) यह श्लोक ऋक्शाखीय पाठ के अतिरिक्त अन्य पाठों में उपलब्ध नहीं होता। दोनों टीकाकारों ने भी इसकी व्याख्या नहीं की है। अतः, इस श्लोक का मूलपाठान्तर्गत होना ही सन्दिग्ध है।

(२) यदि इस श्लोक को मूलपाठ का अंग मान भी लें, तब भी इसमें दो अपरिहार्य दोष आते हैं। यथा :

प्रथम—इस श्लोक के अनुसार समस्त एकमात्रिक (=ह्रस्व) स्वरों (अ इ उ ऋ ऌ) का संवृत-प्रयत्न होगा। उस अवस्था में ह्रस्व इ उ ऋ ऌ वर्णों का अपने दीर्घ और प्लुतों के साथ सवर्ण संज्ञा नहीं होगी, क्योंकि ह्रस्वों का संवृत-प्रयत्न कहा है और दीर्घों का विवृत। ऐसी अवस्था में पाणिनि का समस्त व्याकरण अव्यवस्थित हो जायगा तथा पाणिनि को ह्रस्व अ के समान ह्रस्व इ उ ऋ ऌ के संवृत-प्रयत्न का भी शास्त्रीय-कार्य-निर्वाहार्थ विवृत उपदेश करना होगा (जो कि नहीं किया) और शास्त्रान्त में पुनः संवृत-प्रत्यापत्ति करनी होगी (जो कि नहीं की)।

द्वितीय—इस श्लोक में एकमात्रिक और द्विमात्रिक स्वरों के ही प्रयत्नों का विधान किया है, प्लुतों का निर्देश ही नहीं किया। यदि कहना ही था, तो इसे इस प्रकार पढ़ना चाहिए था :

'संवृतं मात्रिकं ज्ञेयं विवृतं तु ततः परम्।'

इससे स्पष्ट है कि इस श्लोक के आधार पर ह्रस्व अ के संवृत-प्रयत्न का विधान नहीं माना जा सकता। इस श्लोक को अप्रामाणिक ही मानना होगा।

(घ) ऊपर इस श्लोकात्मक शिक्षा के जो दो श्लोक उद्धृत किये हैं, उनमें शल् (श ष स ह) वर्णों का विवृत अथवा नेमस्पृष्ट (अर्धस्पृष्ट)-प्रयत्न कहा है। परन्तु, 'नाज्झलौ' (अ० १।१।१०) सूत्र के महाभाष्य में पतञ्जलि ने लिखा है :

'स्पृष्टं करणं स्पर्शानाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्।
विवृतमूष्मणाम्, ईषदित्यनुवर्त्तते स्वराणां च, ईषद् इति निवृत्तम्।'

अर्थात्, स्पर्श-वर्णों का स्पृष्ट-प्रयत्न है, अन्तःस्थों का ईषत्-स्पृष्ट, ऊष्मों का ईषद् विवृत, स्वरों का विवृत।

पतञ्जलि ने प्राचीन शिक्षा-सूत्रों के आधार पर ऊष्मों का जो ईषद्विवृत-प्रयत्न दरसाया है। उसका इस शिक्षा में कहीं भी निर्देश नहीं मिलता।

उपर्युक्त हेतुओं से स्पष्ट है कि घोष जी की प्रतिज्ञा के ठीक विपरीत इस श्लोकात्मक शिक्षा तथा अष्टाध्यायी में स्वीकृत शिक्षा-मतों में विरोध होने से ये दोनों ग्रन्थ एककर्तृक नहीं हो सकते।

घोष जी की भूल का कारण : घोष जी ने श्लोकात्मक शिक्षा और अष्टाध्यायी का ऊपर-ऊपर से ही अवलोकन किया, इन दोनों ग्रन्थों के शिक्षाविषयक मतों की सूक्ष्म विवेचना नहीं की। इसलिए, उन्हें दोनों ग्रन्थों के शिक्षाविषयक मतभेद ज्ञात नहीं हुए, केवल अष्टाध्यायीस्थ कतिपय प्रत्याहारों का श्लोकात्मक शिक्षा में उल्लेख देखकर दोनों के एककर्तृक होने की असम्भव प्रतिज्ञा कर बैठे।

इस प्रकार, घोष जी के लेख के प्रथम भाग की विवेचना से स्पष्ट है कि यह श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा वैयाकरण पाणिनि मुनि-विरचित नहीं है। अब हम उनके लेख के द्वितीय भाग की विवेचना करते हैं, जिसमें उन्होंने स्वामी दयानन्द सरस्वती पर सूत्रात्मक शिक्षा को पाणिनि के नाम पर प्रसिद्ध करने का दोषारोपण किया।

सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा और स्वामी दयानन्द सरस्वती

हम पहले लिख चुके हैं कि पठन-पाठन में श्लोकात्मक शिक्षा के अधिक प्रवृत्त हो जाने से मूल सूत्रात्मक शिक्षा-ग्रन्थ लुप्तप्राय हो चुका था। चिरकाल के प्रयत्न के पश्चात् सं० १९३६ के पूर्वार्द्ध में, स्वामी दयानन्द सरस्वती को प्रयाग के एक वृद्ध ब्राह्मण के घर से पाणिनीय शिक्षा-सूत्र का एक हस्तलेख प्राप्त हुआ। यह हस्तलेख त्रुटि-बहुल और अन्त में खण्डित था। उन्होंने उसी त्रुटि-बहुल और खण्डित ग्रन्थ को हिन्दी व्याख्यासहित, सं० १९३६ के अन्त में, अपने वैदिक यंत्रालय (काशी) में छापकर 'वर्णोच्चारण-शिक्षा' के नाम से प्रकाशित किया। इसकी भूमिका में प्रथम बार स्वामी दयानन्द सरस्वती ने चिरकाल से प्रसिद्ध श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा को पाणिनि मुनि-विरचित मानने की भ्रान्ति का निवारण किया।

इस सूत्रात्मक शिक्षा के प्रकाशित होने के लगभग ५३ वर्ष पश्चात् डा० रघुवीर जी ने 'पाणिनि के लुप्त शिक्षा-सूत्रों की खोज' नामक लेख में सिद्ध किया कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा वर्णोच्चारण-शिक्षा के नाम से प्रकाशित शिक्षासूत्र ही मूल पाणिनीय शिक्षा है।

डा० रघुवीर जी की इस स्थापना पर घोष जी लिखते हैं :

"डा० रघुवीर 'पाणिनि के लुप्त शिक्षा-सूत्रों की खोज' नामक लेख में पाणिनि के लुप्त शिक्षा-सूत्रों को ढूँढ़ लेने का दावा करता है। अनेक युक्तियों से, जो वे जोश में उपस्थित करते हैं, यह प्रतीत होता है कि उनके खोजे सूत्र (दयानन्द के शिक्षा-सूत्र) वेदाङ्ग शिक्षा हैं। परन्तु, सूक्ष्म परीक्षा से हमें ज्ञात होता है कि वे युक्तियाँ इतनी गम्भीर नहीं, जितनी डा० रघुवीर सोचते हैं।"

समीक्षा : यदि घोष जी डा० रघुवीर की युक्तियों को, जिन्हें उन्होंने स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों की प्रामाणिकता और वेदाङ्गत्व में दी हैं, क्रमशः उद्धृत करके प्रत्याख्यान

करते तो उन्हें ज्ञात होता कि डा० रघुवीर की युक्तियां गम्भीर हैं या नहीं। घोष जी ने उसका स्पर्श किये विना ही 'वे युक्तियाँ उतनी गम्भीर नहीं' लिख कर छोड़ दिया।

घोष जी न तो अपने पक्ष की पुष्टि में ही कोई हेतु देते हैं (केवल प्रतिज्ञा करके छोड़ देते है, जैसा कि हमने ऊपर दिखाया है) और न विरुद्ध पक्ष की युक्तियों को उद्धृत करके प्रमाण-पुरस्सर उनका प्रत्याख्यान ही करते हैं। क्या विरोधी पक्ष की युक्तियों का निराकरण किये विना केवल प्रतिज्ञामात्र से कोई पक्ष पुष्ट हो सकता है ?

यहां यह भी ध्यान रहे कि घोष जी पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों को 'दयानन्द-शिक्षा-सूत्र' लिख कर आरम्भ में ही अपनी मनोवृत्ति का परिचय स्वयं दे रहे हैं।

घोष जी पुनः लिखते हैं :

'वे (डा० रघुवीर) यह मान कर चलते हैं कि दयानन्दीय शिक्षा-सूत्र पाणिनि के लुप्त शिक्षा-सूत्र हैं। यद्यपि कोई स्वतंत्र प्रमाण उनके अस्तित्व का नहीं है और न-ही उनके खोजने की कोई कहानी है।'

समीक्षा : डा० रघुवीर का मूल लेख इस समय हमारे सामने नहीं हैं। इसलिए, हम नहीं कह सकते कि उन्होंने शिक्षा-सूत्रों को पाणिनीय सिद्ध करने में क्या प्रमाण दिये थे।

हमें घोष जी के लेख पर आश्चर्य है कि जो दोष वे डा० रघुवीर पर आरोपित करते हैं उनसे वे स्वयं भी मुक्त नहीं हैं। वे आरम्भ से ही विना परीक्षा किये स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों को दयानन्द-शिक्षा-सूत्र के नाम से लिखते हैं। चाहिए तो यह था कि वे पहले स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों के पाणिनीयत्व- अपाणिनीयत्व की विवेचना करते और उनका अपाणिनीयत्व सिद्ध हो जाने पर उनको 'दयानन्द-शिक्षा-सूत्र' की संज्ञा देते। अस्तु;

अब हम वे प्रमाण उपस्थित करते हैं जिनसे स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षासूत्र पाणिनीय हैं या नहीं।

घोष जी उपर्युक्त उद्धरण में बड़े बल से कहते हैं कि इन शिक्षासूत्रों के अस्तित्व का कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं। हम न केवल उनके स्वतन्त्र अस्तित्व का, अपितु उनके पाणिनीयत्व का भी प्रमाण उपस्थित करते हैं।

सूत्रात्मक शिक्षा के पाणिनीयत्व में प्रमाण

१—तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के 'त्रिरत्न-भाष्य'[१] नामक व्याख्या के रचयिता सोमयार्य लिखते हैं :

'सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति इति पाणिनीयेऽपि'।[२]

यहाँ स्पष्ट ही सोमयार्य 'सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति' वचन को पाणिनीय मान कर

१. यह ग्रन्थकार न्यूनातिन्यून ४०० वर्ष पुराना है।
२. मैसूर सं०, पृ० ४५०।

उद्धृत कर रहे हैं। यह वचन पाणिनीय सूत्रात्मक शिक्षा के षष्ठ प्रकरण में उपलब्ध होता है।

क्या अब भी घोष जी 'कोई स्वतन्त्र प्रमाण उनके अस्तित्व का नहीं' ऐसी घोषणा करने का साहस करेंगे ? यदि घोष जी ने तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का उक्त 'त्रिरत्न-भाष्य' देखा होता, तो वे इस प्रकार लिखने का दुस्साहस न करते।

प्रकृत विषय में यह कहा जा सकता है कि त्रिरत्न-भाष्यकार सोमयार्य ने उक्त सूत्र आपिशल शिक्षा से लिया होगा और भूल से पाणिनि के नाम से उद्धृत कर दिया, क्योंकि यह सूत्र आपिशल शिक्षा में भी इसी प्रकरण पर उपलब्ध होता है।

यदि इस कल्पना को स्वीकार कर लें तब भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि कि त्रिरत्न-भाष्यकार सोमयार्य को सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा का भी ज्ञान था।

ऐसी अवस्था में सोमयार्य आपिशल सूत्र को पाणिनि के नाम से कैसे उद्धृत कर सकते थे ? हाँ, सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा की प्रसिद्धि होने पर इस प्रकार की भूल होना सम्भव है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सोमयार्य ने चाहे पाणिनीय शिक्षा-सूत्र को उद्धृत किया हो, चाहे पाणिनि के नाम से आपिशल शिक्षा-सूत्र को, दोनों ही अवस्थाओं में यह मानना पड़ेगा कि सोमयार्य को किसी सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा का ज्ञान था।

आपिशल और पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों का पार्थक्य

यद्यपि आपिशल और पाणिनीय शिक्षा के सूत्रों में अत्यन्त सादृश्य है, कोई भी व्यक्ति इनका गहरा अनुशीलन किये विना इनके विलक्षण सादृश्य से मोहित हो सकता है, तथापि इन दोनों शिक्षा-सूत्रों में अनेक स्थानों पर जो सूत्रों की न्यूनाधिकता और पाठभेद उपलब्ध होते हैं वे इन दोनों ग्रन्थों के पृथक्-पृथक् प्रवचन की सिद्धि में पर्याप्त प्रमाण हैं।[1]

पुनरपि, हम यहाँ एक ऐसा अकाट्य और नवीन प्रमाण उपस्थित करते हैं, जो न केवल इन दोनों शिक्षा-सूत्रों की भिन्नता ही व्यक्त करता है, अपितु स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों का पाणिनीयत्व भी सिद्ध करता है। यथा :

(२) आपिशल और पाणिनीय शिक्षा के तृतीय प्रकरण के अन्त के सूत्र हैं :

आपिशल पाठ	पाणिनीय पाठ
ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः।	ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः।
विवृतकरणाः स्वराः।	विवृतकरणा वा।
	विवृतकरणाः स्वराः।

इन दोनों पाठों की वर्णानुपूर्वी एक होते हुए भी पाणिनीय शिक्षा में एकसूत्र अधिक है। वह है 'विवृतकरणा वा'। इस सूत्र में पूर्व सूत्र से 'ऊष्माणः' पद की अनुवृत्ति है।

१. कृपया देखें, मेरे द्वारा सम्पादित तथा प्राच्यविद्या-प्रतिष्ठान, ४६४३, रेगरपुरा, गली नं० ४०, करोल बाग, दिल्ली से प्राप्य 'शिक्षा-सूत्राणि' की भूमिका।

तदनुसार किन्हीं आचार्यों के मत में ऊष्म (श ष स ह) वर्णों का अभ्यन्तर-प्रयत्न विवृत है (आपिशल शिक्षा में यह सूत्र नहीं है)। ऊष्म वर्णों का विवृत-प्रयत्न मानने पर ही ऊष्मों की अचों (इ ऋ लृ अ) के साथ स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न का साम्य होने से इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा प्राप्त होती है।[1] सवर्ण संज्ञा होने पर 'दधिशीतम्', 'दण्डहस्तः' आदि में क्रमशः सवर्ण दीर्घत्व की प्राप्ति होती है।[2] इसीलिए, पाणिनि ने अष्टाध्यायी में 'नाज्झलौ' सूत्र द्वारा अचों और हलों की सवर्ण संज्ञा का निषेध किया है। आपिशल शिक्षा में 'विवृतकरणा वा' सूत्र नहीं है। अतः, उसके अनुसार अचों-हलों की परस्पर सवर्ण संज्ञा प्राप्त ही नहीं होती।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित सूत्रात्मक शिक्षा पाणिनीय ही है, और यह आपिशल शिक्षा पाणिनीय शिक्षा से भिन्न है।

यह भी ध्यान रहे कि घोष जी जिस श्लोकात्मक शिक्षा के पाणिनीयत्व की प्रतिज्ञा करते हैं, और उन्होंने अपनी दृष्टि के अनुसार उसका जो मूलपाठ सम्पादित किया है, तदनुसार अचों का अस्पृष्ट-प्रयत्न है और ऊष्मों का नेमस्पृष्ट। अतः, दोनों के अभ्यन्तर-प्रयत्नों में भेद होने के कारण इस श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा के मत में दोनों को परस्पर सवर्ण संज्ञा प्राप्त ही नहीं, फिर पाणिनि ने सवर्ण संज्ञा के निषेध के लिए 'नाज्झलौ' सूत्र क्यों रचा?

(३) स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों की प्रामाणिकता तथा पाणिनीयत्व में एक नई युक्ति हम उपस्थित करते हैं :

इंडियन रिसर्च-इंस्टीट्यूट (कलकत्ता) से सन् १९३९ ई० में श्री अमूल्यचरण विद्याभूषण ने आपिशल शिक्षा के नाम से एक शिक्षा-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। यह ग्रन्थ एक त्रुटिबहुल अशुद्धिपूर्ण हस्तलेख से छपा है। मुद्रित पाठ को देखने से स्पष्ट है कि प्रकाशक को जैसा भी हस्तलेख प्राप्त हुआ था उसको उसने वैसा ही छाप दिया। यह शिक्षा-ग्रन्थ वस्तुतः आपिशलि की नहीं है। इसमें निम्नहेतु हैं :

(क) प्रकाशक ने इसकी भूमिका में कहीं भी नहीं लिखा कि इसके हस्तलेख के आद्यन्त में कहीं भी आपिशलि का नाम निर्दिष्ट है।

(ख) यदि इसके हस्तलेख के आद्यन्त में कहीं आपिशलि का नाम निर्दिष्ट भी हो, तब भी यह हस्तलेख आपिशल-शिक्षा का नहीं हो सकता, क्योंकि इस शिक्षा के अष्टम प्रकरण में एक सूत्र है :

'स एवमापिशलेः पञ्चदश भेदाख्या वर्णधर्मा भवन्ति।' पृष्ठ ३

अर्थात्, इस प्रकार आपिशलि के मत में पन्द्रह भेदवाले वर्णधर्म होते हैं।

इस प्रकार का वचन स्वयं आपिशलि अपने ग्रन्थ में नहीं लिख सकता। यह आर्षशैली के विपरीत है। इससे यह निश्चित है कि यह हस्तलेख आपिशल शिक्षा का नहीं है।

---

१. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्।१।१।९।
२. अकः सवर्णे दीर्घः। अष्टा० ६।१।१०१।

श्री अमूल्य चरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा के उपर्युक्त सूत्रों में जिस प्रकार से आपिशलि को स्मरण किया गया है, ठीक उसी रूपमें पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी के 'वा सुप्यापिशलेः' (६।१।९२) सूत्र में आपिशलि को स्मरण किया है। अतः स्पष्ट है, श्री अमूल्य चरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा सूत्र पाणिनि के हैं।

सम्भव है, इस हस्तलेख के लेखक अथवा प्रकाशक ने शिक्षा के उक्त सूत्र में आपिशलि का नाम देख कर इसे आपिशलि-कृत मान लिया होगा।

(ग) हम पहले लिख चुके हैं कि आपिशल और पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों में अत्यन्त सादृश्य होने पर भी दोनों में पर्याप्त भिन्नता है। जहाँ-जहाँ आपिशल और पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों में भिन्नता है वहाँ श्री अमूल्य चरण जी का पाठ प्रायः पाणिनीय शिक्षा के पाठ का अनुसरण करता है।[1] यथा :

	आपिशल पाठ	पाणिनीय पाठ	अमूल्यचरण-पाठ
(१)	ञमङणनाः स्वस्थाना नासिकास्थानाश्च।	ञमङणनमाः स्वस्थान-नासिकास्थानाः।	ञमङणनम[2] नासिकास्थानाः
(२)	ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः। विवृतकरणाः स्वराः।	ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणः। । विवृतकरणा वा। विवृतकरणाः स्वराः।	ईषद्विवृतकरणा ऊष्माणो विवृतकरणा वा। विवृतकरणाः स्वराः।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित ग्रन्थ भी त्रुटिबहुल तथा अन्त में खण्डित हस्तलेख के आधार पर छपा है। उसमें अष्टम प्रकरण का प्रथम सूत्र ही अधूरा है, अतः अमूल्यचरण के संस्करण से उद्धृत 'स एवमापिशलेः' पंक्ति की तुलना हम नहीं कर सकते। स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्र का सप्तम प्रकरण भी बहुत अव्यवस्थित है। इनकी वास्तविक तुलना तो तभी हो सकती है जब इनके अन्य हस्तलेखों के आधार पर पूर्ण प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित हो जायँ।

इतना होने पर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि श्री अमूल्यचरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा का पाठ पाणिनीय शिक्षापाठ से अधिक मिलता है।

(४) श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा में वर्णों की संख्या त्रिषष्टि अथवा चतुष्षष्टि मानी गई है।[1] श्री अमूल्यचरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा-पाठ में भी 'स्थानकरणप्रयत्नेभ्यो वर्णाः त्रिषष्टिः, चतुष्षष्टिरित्येके' सूत्र द्वारा वर्णों की संख्या तिरसठ और किन्हीं आचार्यों के मत में चौसठ है। दो हस्तलेखों के आधार पर डा० रघुवीर ने आपिशल शिक्षा का जो पाठ प्रकाशित किया है, उसमें 'तत्र स्थानकरणप्रयत्नेभ्यो वर्णास्त्रिषष्टिः' इतना ही पाठ है, अर्थात् आपिशलि केवल तिरसठ अक्षर मानता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती

१. पाणिनीय शिक्षा का सप्तम प्रकरण कुछ सन्दिग्ध प्रतीत होताहै। उसका पाठ सर्वथा भिन्न है।

२. निश्चय ही यहाँ 'म' से आगे 'ाः स्वस्थान' इतना पाठ त्रुटित हो गया है।

ने जो पाणिनीय शिक्षा-सूत्र छापा है, उसमें 'त्रिषष्टिः' इतना ही पाठ है। पूर्वोक्त दोनों पाठों की तुलना से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा प्रकाशित पाठ में सूत्र के आदि और अन्त दोनों ओर का पाठ टूट गया है।

श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा में वर्णों की तिरसठ और चौसठ दोनों संख्याओं का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि श्री अमूल्यचरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्र भी पाणिनीय शिक्षा-सूत्र ही हैं। उन पर आपिशलि का नाम लेखक अथवा प्रकाशक की भ्रान्ति से लिखा गया है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो शिक्षा-सूत्र पाणिनि के नाम से प्रकाशित किये थे, वे वस्तुतः पाणिनीय ही हैं। इसकी पुष्टि श्री अमूल्यचरण जी द्वारा प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों से भी होती है।

घोष जी डा० रघुवीर के लेख की समालोचना करते हुए आगे लिखते हैं :

"डा० रघुवीर की मान्यता कि पतञ्जलि और अन्य वैयाकरणों ने इस सूत्र-ग्रन्थ (दयानन्द शिक्षा-सूत्र) से अंश अथवा भाव लिये, नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि यह ग्रहण बिल्कुल उल्टे प्रकाश से भी हो सकता था; अर्थात् द० शि० सू० के लेखक ने अपनी सामग्री अनेक स्रोतों से, यथा—महाभाष्य, चन्द्रगोमी के वर्ण-सूत्रों से, ली हो। इस तथ्य के प्रकाश में कि इसका कोई प्राचीन तथा नवीन हस्तलेख अथवा कोई उद्धरण नहीं मिलता, इस प्रकार का विचार (जैसा कि हमारा है) बनाना उचित है।"

समीक्षा : डा० रघुवीर के सीधे और स्पष्ट प्रमाण को कि 'दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा के अनेक सूत्र व्याकरण के महाभाष्य, काशिका, न्यास और पदमञ्जरी आदि अनेक ग्रन्थों में कहीं अक्षरशः, कहीं अंशतः और कहीं भावमात्रतः उद्धृत हैं और चन्द्रगोमी ने जैसे पाणिनीय अष्टाध्यायी के आधार पर अपना व्याकरण लिखा,[1] उसी प्रकार उसने पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों के आधार पर अपने वर्ण-सूत्र रचे' को घोष जी ने पलटने की चेष्टा की है। क्या घोष जी स्वामी दयानन्द-प्रकाशित पाणिनीय शिक्षा के समस्त सूत्रों को व्याकरणादि शास्त्रों के प्राचीन अथवा नवीन ग्रन्थों में अंशतः अथवा भावतः उद्धृत बता सकते हैं। यदि नहीं, तो दयानन्द-शिक्षा के लेखक ने उन सूत्रों की रचना, जो न किन्हीं प्राचीन ग्रन्थों में उद्धृत हैं, और न जिनका विषय चान्द्र वर्ण-सूत्रों में विद्यमान है, कहाँ से संगृहीत किये ?

घोष जी के कथन में एक और दोष

व्याकरण के न्यास और पदमञ्जरी आदि ग्रन्थों में शिक्षा के अनेक ऐसे सूत्र उद्धृत हैं, जो दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों में नहीं मिलते। न्यास और हैम बृहद्वृत्ति में अष्टम प्रकरण के २३ सूत्र आनुपूर्वी से उद्धृत हैं।[2] दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों में उनमें से केवल 'नाभि-

१. यह विषय दोनों व्याकरणों की तुलना से स्पष्ट है।

२. देखें मेरा आपिशलि, पाणिनि और चन्द्रगोमी के शिक्षा-सूत्रों का संस्करण—'शिक्षासूत्राणि', पृष्ठ ७—१० तक टिप्पणीस्थ पाठान्तर।

प्रदेशात्……' आदि प्रथम सूत्र और वह भी अधूरा मिलता है, शेष २२ सूत्र है ही नहीं। इससे स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अन्य ग्रन्थों से इन सूत्रों का संकलन नहीं किया, अन्यथा अष्टम प्रकरण का 'नाभि-प्रदेशात्……' सूत्र खण्डित न रहता और अगले २२ सूत्र भी न छूटते।

सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा के संग्राहक अथवा रचयिता स्वामी दयानन्द ही हैं ऐसा मान भी लें (जैसा घोष जी आगे चलकर स्वयं लिखेंगे), तब भी घोष जी को स्वामी जी का अगाध पाण्डित्य तो स्वीकार करना ही पड़ेगा, उनकी बुद्धि की स्तुति करनी ही पड़ेगी कि उन्होंने किसी प्राचीन सूत्रात्मक शिक्षा के शतशः ग्रन्थों में बिखरे हुए वचनों को संकलित करके और कुछ वचन अपनी ओर से जोड़कर उन्हें ऐसे सुन्दर ढंग से प्रकरणानुसार सुव्यवस्थित कर दिया, जो संकलनमात्र न रहकर स्वतन्त्र ग्रन्थ-रूप में परिणत हो गये और उसके ५० वर्ष पश्चात् उपलब्ध आपिशल शिक्षा से उसकी आनुपूर्वी भी अद्भुत साम्य के साथ मिल गई। इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती के विलक्षण पाण्डित्य की स्तुति की जाय अथवा घोष जी की विलक्षण ऊहा की? पाठक इसपर स्वयं विचार करें।

यदि घोष जी उक्त कल्पना के स्थान पर यह कल्पना करते कि 'स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षासूत्र पाणिनि के नहीं हैं, अपितु आपिशलि के हैं। स्वामी दयानन्द ने उन्हें झूठ-मूठ ही पाणिनि के नाम से प्रसिद्ध कर दिया' तब भी उनकी कल्पना कुछ सीमा तक युक्तियुक्त कही जा सकती थी। परन्तु, घोष जी जानते थे कि यदि एकबार भी आपिशलि के शिक्षा-सूत्रों को (जो उनके ग्रन्थ-प्रकाशन से पूर्व छप चुके थे) आपिशलि-कृत मान लिया तो दयानन्द-प्रकाशित शिक्षासूत्रों को पाणिनि-विरचित मानना ही पड़ेगा। इस कारण घोषजी ने आपिशल शिक्षासूत्रों की चर्चा तक नहीं की। घोष जी का कर्त्तव्य था कि दयानन्द-प्रकाशित शिक्षासूत्रों की समालोचना करते हुए उन्हीं जैसे आपिशल शिक्षा-सूत्रों का निर्देश अवश्य करते। यदि यह माना जाय कि घोष जी को डा० रघुवीर द्वारा प्रकाशित आपिशल शिक्षा का ज्ञान ही नहीं था, तो यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि घोष जी शिक्षा पर कार्य करें और उनके ग्रन्थ से कई वर्ष पूर्व प्रकाशित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण आपिशल शिक्षा का उन्हें ज्ञान ही न हो। ऐसे अधूरे ज्ञान रखनेवाले व्यक्ति को ग्रन्थ-लेखन अथवा सम्पादन का क्या अधिकार है? कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने भी ऐसे त्रुटिपूर्ण ग्रन्थ को कैसे प्रकाशित कर दिया!

अब रही हस्तलेख की बात। संस्कृत-वाङ्मय में अनेक ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनके पुराकाल में अत्यन्त प्रसिद्ध रहने पर भी चिरकाल तक उनके हस्तलेख प्राप्त नहीं हुए। अत्यन्त प्रयत्न करने पर उनके एक-एक, दो-दो त्रुटित हस्तलेख मिले हैं। आज भी अनेक ऐसे दुर्लभ ग्रन्थों के हस्तलेख मिल रहे हैं। अभी ४-५ वर्ष हुए, एक ऐसा ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाश में आया, वह है 'काशकृत्स्न धातुपाठ'[1]। इसी प्रकार

---

१. यह धातुपाठ चन्नवीर कविकृत कन्नड-टीकासहित कन्नड-लिपि में सन् १९५२ ई० में प्रकाशित है। इसके विषय में 'संस्कृत-रत्नाकर', फाल्गुन २०१२ वि० सं० के अंक में मेरा 'काशकृत्स्नीयो धातुपाठः' लेख द्रष्टव्य है।

शर्ववर्मकृत[1] कातन्त्र धातुपाठ का मूल संस्कृतपाठ अनुपलब्ध था। जर्मन-प्रोफेसर लिबिश ने इसका तिब्बती अनुवाद प्रकाशित किया था। उसका एकमात्र त्रुटिबहुल हस्तलेख अभी-अभी प्राप्त हुआ है।[2] इसी प्रकार पाणिनीय शिक्षा-सूत्र का भी एक त्रुटित हस्तलेख स्वामी दयानन्द को प्राप्त हो सकता था। इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है? उसकी दूसरी प्रति के उपलब्ध न होने[3] मात्र से वह ग्रन्थ कल्पित नहीं कहा जा सकता।

वस्तुतः घोष जी अपनी इस युक्ति से स्वयं असन्तुष्ट थे। अतः वे ससंभ्रम आगे लिखते हैं :

"इस प्रकार हम देखते हैं कि दयानन्द के शिक्षा-सूत्र १९वीं सदी के प्रारम्भ में प्रकाश में आने के लिए लगभग २५०० वर्ष तक अन्धकार में पड़े रहे। ऐसा अन्वेषण नितान्त असम्भव न भी हो, ऐसे विषयों में बड़ा सावधान रहना चाहिए। कौटिल्य और भास के ग्रन्थों का उदाहरण यहाँ नहीं लिया जा सकता, क्योंकि इनके उद्धरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हो चुके हैं।"

घोष जी यहाँ जिन कौटिल्य अर्थशास्त्र और भास के नाटकों का उल्लेख कर रहे हैं, वे जिस समय प्रकाश में आये उस समय पाश्चात्य विद्वानों ने इन ग्रन्थों को कल्पित और जाली सिद्ध करने के लिए यही प्रधान युक्ति दी थी, जिसे आज घोष जी पाणिनीय शिक्षासूत्रों के विषय में दे रहे हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने कौटिल्य अर्थशास्त्र और भास के नाटकों को अप्रामाणिक और जाली सिद्ध करने के लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा था। यह तो शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री का महान् प्रयत्न था कि पाश्चात्य विद्वानों की एक-एक युक्ति का मुँहतोड़ उत्तर मिला, उन्हें चुप होना पड़ा और उन्हें इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता स्वीकार करनी पड़ी। इसीलिए, घोष जी भी आज इन्हें प्रामाणिक मानने का साहस कर रहे हैं।

प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् इस विषय में सचेष्ट रहते हैं कि भारतीय इतिहास किसी प्रकार अधिक प्राचीन सिद्ध न हो जाय। जब कभी ऐसा कोई प्राचीन लेख अथवा ग्रन्थ उपलब्ध हो जाता है जो उनकी अप्रामाणिक स्थापनाओं को समूल नष्ट करता हो तो उनमें खलबली पैदा हो जाती है और वे तत्काल उसे कल्पित और जाली सिद्ध करने के

---

१. कई शर्ववर्मा को कातन्त्र-वृत्तिकार मानते हैं। देखें मेरा 'संस्कृत-व्याकरणशास्त्र का इतिहास', पृष्ठ ४०४, ४०५।

२. इसको उपलब्ध करने का श्रेय हमारे मित्र कपिलदेव जी, एम० ए० को है। उन्हीं के द्वारा मुझे इसकी प्रतिलिपि प्राप्त हुई है।

३. हम पहले लिख चुके हैं कि इण्डियन रिसर्च-इंस्टीट्यूट (कलकत्ता) से प्रकाशित 'आपिशल शिक्षा' भी वस्तुतः पाणिनीय शिक्षा है। अतः, पाणिनीय शिक्षा का द्वितीय हस्तलेख भी प्राप्त हो गया, यह मानना ही पड़ेगा।

लिए तत्पर हो जाते हैं अथवा उससे प्रकट होनेवाले तथ्य को ऐसे तोड़-मराड़ कर लिखते हैं, जिससे संसार में सच्चाई प्रकट ही न हो[१]।

घोषजी कौटिल्य अर्थशास्त्र और भास के नाटकों को इसलिए प्रामाणिक मानने को तैयार हो गये कि उनके उद्धरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हो गये हैं। घोषजी की युक्ति उनके ही विपरीत पड़ती है। यदि अर्थशास्त्र और भास के नाटकों के कतिपय उद्धरणों के अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाने से वे प्रामाणिक माने जा सकते हैं, तो दयानन्द-प्रकाशित शिक्षासूत्र जिसके आधे से अधिक सूत्र महाभाष्य, काशिका, न्यास और पदमञ्जरी आदि अनेक ग्रन्थों में उद्धृत हैं; प्रमाण क्यों नहीं? यदि यह कहा जाय कि इन ग्रन्थों में ये सूत्र पाणिनि के नाम से कहीं उद्धृत नहीं, तो इसका भी उत्तर हम पहले लिख चुके हैं कि तैत्तिरीय

---

१. बोधाज कोई (प्तेरिया=पितर देश) स्थान से संवत् १९६४ में ह्यूगोविलङ्कर को कीलाक्षरों में लिखी कुछ मुद्राएँ प्राप्त हुई थीं। इनका काल पाश्चात्य विद्वानों द्वारा १४०० ईसा-पूर्व माना गया है। इनमें मितन्नीराज मत्तिवज़ की हित्तितिराज सुब्बी लुल्युम से की गई सन्धि का उल्लेख है। इनमें इन्द्रमित्र, वरुण और नासत्य देवों का वर्णन है, अन्य मुद्राओं पर एकवर्तन्न और तेरवर्तन्न, पञ्जवर्तन्न तथा शहोतवर्तन्न रथों का वर्णन है। ये देव और रथ निश्चय ही वैदिक हैं। ऋग्वेद में इन्द्र के शतचक्र, नासत्य के त्रिचक्र तथा एकचक्र आदि रथों का स्पष्ट वर्णन है। इन मुद्राओं के प्राप्त होने पर योरोपीय विद्वानों की मान्यता को भारी धक्का पहुँचा, क्योंकि उन्होंने वेद की रचना १००० से १५०० ई० पूर्व मात्र में स्वीकार की थी। १४०० ई० पू० में वैदिक देव और रथ भारत से इतनी दूर कैसे पहुँच सकते थे! अतः, उन्होंने झट नया मार्ग निकला कि आर्य इस देश में ठहरकर भारत की ओर अग्रसर हुए थे और इसी काल में आर्यों को इन देवों का ज्ञान हो गया था। (देखें 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास', पृष्ठ २५०–२५२)

इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वान् कहा करते थे कि भारतीय आर्यों की सभ्यता के अतिरिक्त प्राचीन अवशेष उपलब्ध नहीं होते। इसलिए, भारत में आर्यों का आगमन १५०० ई० पू० से अधिक प्राचीन नहीं है। जब मोंहजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई से पाश्चात्यमतानुसार ही ५००० सहस्र वर्ष प्राचीन उन्नत सभ्यता के चिह्न उपलब्ध हुए तो पाश्चात्य विद्वानों ने इस सभ्यता को अनार्यों की सिद्ध करने के लिए प्रयत्न किया, परन्तु आर्यों के बाहर से भारत में आने और यहाँ के अनार्यों पर विजय पाने का उल्लेख किसी भी संस्कृत-ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता। यदि वस्तुतः आर्यों ने यह महान् विजय प्राप्त की होती, तो वे उसका साभिमान उल्लेख अपने ग्रन्थों में अवश्य करते। इसके विपरीत प्राचीन संस्कृत-वाङ्मय आर्य को यहीं का आदिवासी मानता है। इन दृष्टांतों से पाश्चात्य विद्वानों की मनोवृत्ति का परिचय स्पष्ट लक्षित होता है।

प्रातिशाख्य के त्रिरत्न-भाष्य के कर्ता सोमयार्य इस पाणिनीय शिक्षा के छठे प्रकरण के 'सन्ध्यक्षण्णां ह्रस्वा न सन्ति' इस सूत्र को पाणिनि के नाम से ही उद्धृत करते हैं।[1]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि घोष जी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए जो युक्तियाँ उपस्थित की हैं, वे न केवल सारहीन ही हैं, अपितु उनके पक्ष का व्याघात भी करती हैं।

इसके आगे घोषजी यह सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं कि स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्र स्वामी दयानन्द का ही रचा है। वे लिखते हैं :

"जिस सामग्री को डा० रघुवीर ने बड़ी योग्यता से अपने लेख में संगृहीत किया है उससे यह जाना जा सकता है कि दयानन्द-शिक्षा-सूत्र कोई प्राचीन ग्रन्थ नहीं है। आर्यसमाज के प्रकाशक, वैदिक यन्त्रालय (अजमेर) के साम्प्रतिक सूचीपत्र को देखने से पता चलता है कि दयानन्द-शिक्षा-सूत्र वेदाङ्ग-प्रकाश के १४ भागों में पहला है, जिन्हें स्वामी दयानन्द ने वैदिक विद्यार्थियों के लिए संगृहीत किया है। संभवतः, ध्यान न रहने से डा० रघुवीर ने इसका उल्लेख अपने लेख में नहीं किया। ये वेदाङ्ग-प्रकाश के भाग पृथक्-पृथक् भी छपे हैं। इनमें प्रथम भाग पर 'पाणिनि-कृत वर्णोच्चारण-शिक्षा' लिखा है। जैसा कि डा० रघुवीर ने बताया है, यह सूत्र-ग्रन्थ चन्द्रगोमी के वर्णसूत्रों से मिलता है, जो ५०० ईसवी का बौद्ध वैयाकरण था।"

यद्यपि घोषजी का यह लेख उत्तर लेख की भूमिका है, इसलिए इसपर विशेष लिखना आवश्यक नहीं, तथापि इस लेख में घोषजी ने जो भूल की है, उसकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना समीचीन होगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने संस्कृत के विद्यार्थियों की सुविधा के लिए 'वेदाङ्ग-प्रकाश' नामक एक ग्रन्थमाला प्रकाशित की थी, जिसमें वे विविध वेदाङ्गों के ग्रन्थों की हिन्दी में व्याख्या का अथवा छात्रोपयोगी मूल ग्रन्थों का प्रकाशन करना चाहते थे। अपने परलोक-गमन तक वे इस ग्रन्थ-माला के १४ भाग ही प्रकाशित कर पाये। इन भागों में वर्णोच्चारण-शिक्षा पाणिनि मुनि-प्रोक्त शिक्षा-ग्रन्थ का हिन्दी भाषा में व्याख्यात्मक भाग है। धातुपाठ पाणिनि के मूल ग्रन्थ का निघण्टु यास्क-विरचित[2] (अथवा अन्य-विरचित) मूल ग्रन्थ का वर्णानुक्रम-सूची-युक्त छात्रोपयोगी संस्करण है। क्या वेदाङ्गप्रकाश के १४ भागों में मुद्रित होने से पाणिनीय मूल धातुपाठ और यास्कीय निघण्टु भी स्वामी दयानन्द-संगृहीत हो जायँगे ? इसी प्रकार उणादिकोश जिसमें प्राचीन पञ्चपादी सूत्रों की व्याख्या है, वे मूल उणादि स्वामी दयानन्द-संगृहीत माने जायँगे ? यदि नहीं, तो वर्णोच्चारण नामक भाग में पाणिनि मुनि-कृत प्राचीन शिक्षा-सूत्रों की व्याख्या होने से शिक्षा-सूत्र दयानन्द-संगृहीत कैसे हो गये ?

---

१. देखें मैसूर-संस्करण, पृ० ४५०।

२. भगवद्दत्त जी कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' (वेदों के भाष्यकार) पृष्ठ १९२—१९४।

इसी लेख में घोष जी ने चन्द्रगोमी को ५०० ईसवी का माना है, यह भी सर्वथा मिथ्या है। चन्द्रगोमी को उद्धृत करनेवाले, महाभाष्य के व्याख्याता और वाक्यपदीय के कर्त्ता भर्तृहरि ही ५०० ईसवी से बहुत पूर्व के हैं[१], इसलिए चन्द्रगोमी तो निश्चय ही उनसे पर्याप्त प्राचीन हैं[२]।

इतनी भूमिका के अनन्तर घोष जी जो कहना चाहते हैं, उसे उनके ही शब्दों में पढ़िए :

This sutra work, as has been shown by Dr. Raghuvira (loc. cit.) resembles the Varna-sutra of Candragomin, the Buddist grammarian, who flourished in about 500 A. D. Considering the great influence which Candragomin exercised on the grammarians of Panini's school (the Kasika and the Vakyapadiya showing traces of such influence) it is quite possible that some late grammarian re-edited and amplified the Varna-sutras of Candragomin and fathered this upon Panini, evidently for imparting to it a superior authority. Though there is no sufficient material to prove this, we are inclined to suggest that this late grammarian was Svami Dayananda himself, who among other things was a very close student of Sanskrit Grammars as his Vedangaprakasa and the edition of Panini's Astadhyayi show. But whatever may be the actual fact about the authorship of the DPS., it is sure that the work is neither from the hands of Panini nor an old one. (Introduction, 48)

अर्थात्, "चन्द्रगोमी के पाणिनि-सम्प्रदाय पर भारी प्रभाव को देखते हुए (काशिका तथा वाक्यपदीय इस प्रभाव के संकेत रखते हैं) यह सम्भव है कि किसी परवर्त्ती

---

१. इसी प्रकरण में हमने 'सं० व्या० शास्त्र का इतिहास', पृ० २६१ पर लिखा है कि 'अष्टाङ्ग-संग्रहकार वाग्भट चन्द्रगुप्त द्वितीय का समकालिक है, उससे उत्तरवर्त्ती नहीं। पं० श्री गुरुपद हालदार ने वृद्धत्रयी के पृ० २८३, २६१ पर लिखा है कि 'युधिष्ठिर मीमांसक ने चन्द्रगुप्त द्वितीय को वाग्भट-वर्णित शकनृपति माना है' यह ठीक नहीं। सम्भव है, श्री हालदार जी, हिन्दी भाषा का सम्यक् ज्ञान न होने के कारण, मेरे लेख का ठीक अभिप्राय न समझ सके हों।

२. देखें मेरा 'संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास'—भर्तृहरि के लिए पृ० ५८-२६४, चन्द्रगोमी के लिए पृ० २४३-२४५।

वैयाकरण ने उन्हें श्रेष्ठ प्रमाण देने के लिए उन्हें पुनः सम्पादित तथा परिवर्द्धित किया और उन्हें पाणिनि के मत्थे मढ़ दिया, यद्यपि यह प्रमाणित करने के लिए पूरे प्रमाण नहीं हैं, फिर भी हमें लगता है कि स्वामी दयानन्द ही स्वयं वह परवर्ती वैयाकरण थे, जो अन्य बातों के साथ संस्कृत-व्याकरण के बड़े सूक्ष्म अध्येता थे, जैसा कि उनके वेदाङ्ग-प्रकाश तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी के संस्करण से स्पष्ट है। दयानन्द-शिक्षा-सूत्र के बारे में वस्तुस्थिति कुछ भी हो, यह निश्चित है कि यह ग्रन्थ पणिनि या किसी प्राचीन व्यक्ति का नहीं है।"

इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका बाँधने के बाद घोषजी ने अपने मन के भाव को कुछ स्पष्ट करने का यत्न किया। इस लेख में घोष जी ने तीन स्थापनाएँ की हैं:

१. दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्र चन्द्रगोमी के वर्णसूत्रों का ही पुनः सम्पादित तथा परिवर्धित रूप है।

२. इस रूप को देनेवाले स्वयं स्वामी दयानन्द थे।

३. इतना निश्चित है कि यह ग्रन्थ पणिनि अथवा किसी प्राचीन व्यक्ति का बनाया नहीं है।

अब हम घोष जी की इन तीनों स्थापनाओं की क्रमशः आलोचना करते हैं:

घोषजी ने पहले लिखा है कि द० शि० सूत्र के लेखक ने अपनी सामग्री अनेक स्रोतों से ली है और यहाँ इन का मुख्य आधार चान्द्र वर्णसूत्रों को लिखा है। यह वदतोव्याघात दोष है। हम पहले भी लिख चुके हैं कि यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन शिक्षा-सूत्रों का संकलन महाभाष्य, काशिका, न्यास तथा पदमञ्जरी आदि ग्रन्थों के आधार पर किया होता तो यह ग्रन्थ आज जिस रूप में स्थान-स्थान पर त्रुटित और अन्त में खण्डित उपलब्ध होता है, वैसा न होता। हम यहाँ कुछ विस्तार से तुलना करके उक्त कथन को पुष्ट करते हैं:

	द० पाणिनीय शिक्षा	अन्यत्र उद्धृत शिक्षा-सूत्र
(क)	विवृतकरणाः स्वराः। संवृतस्त्वकारः।	विवृतकरणाः स्वराः। तेभ्य ए ओ विवृततरौ। ताभ्यामपि ऐ औ। ताभ्यामप्याकारः। संवृतस्त्वकारः। (न्यास, भाग १, पृष्ठ ८; पदमञ्जरी, भाग १, पृ० १८)
(ख)	वर्गाणां तृतीय···घोषवन्तः। यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः।	वर्गाणां तृतीय···घोषवन्तः। वर्ग्ययमानां तृतीया अन्तःस्थाश्चाल्पप्राणाः, इतरे सर्वे महाप्राणाः। यथा तृतीयास्तथा पञ्चमाः। (न्यास, भाग १, पृ० ७५; महाभाष्य १।१।१० में अंशतः)

(ग) नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरित... ...प्रयत्नेन विधीयते।	नाभिप्रदेशात् प्रयत्नप्रेरितः··· ···प्रयत्नेन विधार्यते। सविधार्यमाणः स्थानमभिहन्ति। ततः स्थानाभिघातात् ध्वनिरुत्पद्यते। सवर्णश्रुतिः। सवर्णस्यात्मलाभः। तत्र ध्वनावुत्पद्यमाने·········। (इसके आगे न्यास, भाग १, पृष्ठ ५६, ५७ पर २१ सूत्र और उद्धृत हैं)

इस तुलना से स्पष्ट है कि प्रथम स्थान में तीन सूत्र और द्वितीय स्थान में एक सूत्र खण्डित है। तृतीय स्थल में 'प्रयत्नेन विधीयते (विधार्यते)' से आगे न केवल प्रकृत सूत्र ही खण्डित है, अपितु उसके आगे लगभग २५ सूत्रात्मक ग्रन्थ त्रुटित है। इस त्रुटित अंश के २१ सूत्र न्यास में उद्धृत हैं।

इस तुलना से यह भी स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस ग्रन्थ को न तो इधर-उधर के ग्रन्थों से संकलित ही किया और न उसने मूल उपलब्ध हस्तलेख के त्रुटित अंश को ही पूरा करने का प्रयत्न किया। उन्हें जैसा हस्तलेख प्राप्त हुआ उसे उसी रूप में हिन्दी-व्याख्या-सहित प्रकाशित कर दिया। यदि स्वामी दयानन्द इस ग्रन्थ के सूत्रों को इधर-उधर से संकलित करते अथवा अपने त्रुटित हस्तलेख को ही न्यासादि ग्रन्थों में उद्धृत सूत्रों से पूर्ति करते तो यह ग्रन्थ इतना त्रुटित न रहता, विशेष कर इसका अष्टम प्रकरण।

यदि कहा जाय कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने चान्द्र वर्ण-सूत्रों का ही पुनः सम्पादन और परिवर्तन किया, तो यह कथन भी ठीक नहीं, क्योंकि—

(क) चान्द्र वर्ण-सूत्र पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों के समान आठ प्रकरणों में विभक्त नहीं हैं। उनमें केवल वे ही पांच प्रकरण हैं जिनका चान्द्र व्याकरण से साक्षात् सम्बन्ध है। पञ्चम, सप्तम और अष्टम प्रकरण इसमें नहीं है। आपिशल और पाणिनीय शिक्षा स्वतन्त्र विद्या-ग्रन्थ हैं, इसलिए इनमें वर्णोच्चारण-शिक्षा-सम्बन्धी उन नियमों का भी वर्णन है जिनका उनके व्याकरण से साक्षात् सम्बन्ध नहीं है।

(ख) दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा में अनेक ऐसे सूत्र हैं जो अन्य ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते और न उनके मतों का ही कहीं संकेत है।

(ग) दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्र का जो चार सूत्रात्मक (द० संस्करण में एक ही सूत्र माना है) पञ्चम प्रकरण है, उसका एक भी सूत्र अभी तक किसी ग्रन्थ में उद्धृत नहीं मिला।

(घ) चान्द्र वर्ण-सूत्र के अन्तिम प्रकरण में 'एकमात्रिको ह्रस्वः, द्विमात्रिको दीर्घः, त्रिमात्रिकः प्लुतः, उच्चैरुदात्तः, नीचैरनुदात्तः, समाहारः स्वरितः, स्वस्थानानुसिका निरनुनासिकाश्च' सूत्र पढ़े हैं। यदि स्वामी दयानन्द ने चान्द्र

वर्ण-सूत्रों का ही सम्पादन तथा परिवर्तन किया होता, तो जैसे अन्य परिवर्तन-परिवर्धन यथाप्रकरण किये (घोष जी के मतानुसार) उसी प्रकार इन सूत्रों का अथवा इनके समानार्थक वचनों का निवेश भी इसी प्रकरण में किया जाता। परन्तु, स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा में प्रथम तीन सूत्रों के स्थान में अष्टाध्यायी के 'ह्रस्वं लघु, संयोगे गुरु, दीर्घं च' सूत्र और अगले तीन सूत्रों पर अष्टाध्यायी के पते लिखे हैं और इन सूत्रों को स्थान-प्रकरण से पूर्व स्वयमुद्धृत वचनों के अन्तर्गत पढ़ा है, न कि पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों के अन्तर्गत।' चान्द्र का अन्तिम सूत्र दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों में मिलता ही नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्र चान्द्र वर्ण-सूत्रों का परिवर्धित संस्करण नहीं है।

इसका उत्तर भी प्रथम स्थापना की समीक्षा के अन्तर्गत ही आ गया, अर्थात् यदि इन शिक्षा-सूत्रों का संकलन स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया होता तो यह ग्रन्थ जिस त्रुटित अवस्था में उपलब्ध होता है वैसा न होता।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने पाणिनीय शिक्षा के हस्तलेखस्थ सूत्रों की व्याख्या करते हुए शिक्षा-शास्त्र से सामान्य सम्बन्ध रखनेवाले अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि के अनेक वचनों की भी व्याख्या की है। ऐसे वचन प्रथम स्थान-प्रकरण से पूर्व भूमिकात्मक पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों के साथ उपलब्ध होते हैं। स्वामी दयानन्द द्वारा उद्धृत वचनों और पाणिनि के मूल शिक्षा-सूत्रों में किसी को भ्रम न हो, इसके लिए स्वामी दयानन्द ने स्वप्रकाशित ग्रन्थ में दो संकेत किये थे :

(क) सम्पूर्ण व्याख्यात संस्कृत-वचनों (उद्धृत तथा मूलसूत्र) के आरम्भ में (बाईं ओर) एक क्रमिक संख्या देकर अन्त में भी प्रति-प्रकरण एक क्रमिक संख्या दी है। वह अन्त की क्रमिक संख्या केवल पाणिनीय शिक्षा-सूत्रों पर ही दी गई है, अन्य ग्रन्थों से उद्धृत वचनों पर नहीं दी गई। यथा :

१—अक्षरं नक्षरं......॥
२—वर्णज्ञानं......॥
३—आकाशवायु......॥१॥
४—आत्मा बुद्ध्या......॥
५—तमक्षरं.........॥२॥
६—श्रोत्रोपलब्धि......॥
७—त्रिषष्टिः ॥३॥
८—अतोऽन्ये व्यञ्जन......॥
२१—स्थानमिदं......॥४॥
२२—अकुहविसर्जनीयाः कण्ठ्याः ॥५॥

इनमें आदि की क्रम-संख्या ३, ५, ७, २१, २२ के पाठ के अन्त में जो १, २, ३, ४, ५ क्रमिक संख्या है वह पाणिनीय शिक्षा-सूत्र के क्रम का बोध कराने के लिए है।

---

१. दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा में कौन-से वचन स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत अथवा संकलित हैं और कौन-से वचन पाणिनीय शिक्षा के हैं, इसकी विवेचना अनुपद की जायगी।—ले०

प्रारम्भ की क्रमिक संख्या सभी व्याख्यात संस्कृत-पाठों पर है, चाहे वे उद्धृत वचन हों, चाहे मूल शिक्षा-सूत्र।

(ख) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के मूल सूत्रों को बड़े (मोटे) टाइप में छपवाया था और ग्रन्थों से संगृहीत वचनों को मध्यम टाइप में तथा अपनी हिन्दी-व्याख्या को बारीक टाइप में।[1]

इस बात का संकेत स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वर्णोच्चारण-शिक्षा की भूमिका में स्वयं किया है :

'इस ग्रन्थ में जो-जो बड़े अक्षरों में पाठ है, वह-वह पाणिनि मुनि-कृत (शिक्षा का) और मध्यम अक्षरों में अष्टाध्यायी और महाभाष्य का पाठ और जो-जो छोटे अक्षरों में छपा है वह मेरा बनाया हुआ है। ऐसा सर्वत्र समझना चाहिए।'[2]

पाणिनीय शिक्षा के मूल सूत्रों तथा अन्य ग्रन्थों से संगृहीत वचनों का भेद दिखाने के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो टाइप-भेद की व्यवस्था की थी वह मुद्रकों के अज्ञानवश उत्तर संस्करणों में स्थिर न रह सकी। अगले संस्करणों में मूल शिक्षा-सूत्र तथा अन्यतः संगृहीत वचन एक ही टाइप में छापे गये। इससे साधारण व्यक्तियों को भ्रम होना स्वाभाविक है। उत्तर संस्करणों के मुद्रक और प्रकाशक इतने असावधान रहे कि कतिपय संस्करणों में स्वामी दयानन्द की लिखी भूमिका भी उड़ गई। यथा सं० १७७० का दशम संस्करण। अतः स्वामी दयानन्द के द्वारा निर्धारित टाइप भेद को मिटाने और भूमिका का उड़ाने से होनेवाले भ्रम के दोषी परोपकारिणी सभा के कार्यकर्त्ता हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती नहीं। उन्होंने अपनी स्थिति सर्वथा स्पष्ट रखी थी।

इसका उत्तर हम विस्तारपूर्वक पहले लिख चुके हैं और सप्रमाण बता चुके हैं कि न केवल स्वामी दयानन्द सरस्वती से कई शती पूर्व के ग्रन्थकार इस सूत्रात्मक शिक्षा से परिचित थे, अपितु तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के व्याख्याता सोमयार्य ने तो पाणिनि के नाम से इसका सूत्र भी उद्धृत किया है।

अतः, यह निश्चित है कि सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा संकलित नहीं है। दयानन्द से सैकड़ों वर्ष पूर्वभावी आचार्य इस शिक्षा से परिचित थे। इस लिए यह सूत्रात्मक शिक्षा न केवल दयानन्द से प्राचीन है, अपितु पाणिनीय भी है।

इस सारी विवेचना से स्पष्ट है कि प्रो० मनोमोहन घोष जी ने स्वामी दयानन्द सरस्वती पर इस सूत्रात्मक शिक्षा को संकलित करके पाणिनि के नाम से प्रसिद्ध करने का जो गम्भीर आरोप लगाया है, वह सर्वथा निराधार है।

अब हम घोष जी के पाणिनीय शिक्षा के सम्पादन-कार्य के सम्बन्ध में दो-चार बातें कह कर इस लेख को समाप्त करते हैं।

---

१. वर्णोच्चारण-शिक्षा का सं० १९३६ का प्रथम संस्करण।

२. भूमिका के अन्त में।

छोटी-सी श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा तथा उसकी दो व्याख्याओं के सम्पादन में घोष जी की कितनी हो अक्षम्य न्यूनताएँ हैं। उदाहरण के लिए, कतिपय न्यूनताएँ नीचे निर्दिष्ट हैं :

(१) पाणिनीय शिक्षा की पञ्जिका-व्याख्या में प्राचीन शिक्षा के दो वचन उद्धृत हैं :

ऌकारस्य दीर्घादयो न सन्ति इति स्मरणात्। (पृष्ठ ६, १२)

सन्ध्यक्षराणामपि ह्रस्वा न सन्ति इति स्मरणात्। (पृष्ठ ६)

इनमें से प्रथम वचन प्रकाश-व्याख्या में इस प्रकार उद्धृत है :

ऌवर्णो न दीर्घ इति स्मरणात्। (पृष्ठ २५)

इन वचनों के साथ 'इति स्मरणात्' पदों का निर्देश होने से स्पष्ट है कि व्याख्याकार ने इन्हें किसी ग्रन्थविशेष से उद्धृत किया है।

ये दोनों वचन सूत्रात्मक पाणिनीय शिक्षा तथा आपिशल शिक्षा के षष्ठ प्रकरण में स्वल्प भेद से उपलब्ध होते हैं। घोष जी ने इन वचनों के आकर-स्थान का कुछ भी निर्देश नहीं किया। घोष जी को चाहिए था कि इन सूत्रों के आगे पाणिनीय शिक्षा का फल न सही (उनके मत में कल्पित होने से), आपिशल शिक्षा का तो तुलनार्थ संकेत करते, क्योंकि आपिशल शिक्षा उनके ग्रन्थ के प्रकाशित होने से कई वर्ष पूर्व मुद्रित हो चुकी थी। प्रतीत होता है, पाणिनीय शिक्षा का सम्पादन करते समय घोषजी को शिक्षा-शास्त्र से सम्बद्ध मुद्रित ग्रन्थों का ही पूरा परिचय नहीं था, अमुद्रित ग्रन्थों के अनुशीलन की तो उनसे आशा करना ही व्यर्थ है। इसीलिए, उक्त वचनों के आगे उन्होंने तुलना रूप में भी आपिशल शिक्षा-सूत्रों का निर्देश नहीं किया।

(२) घोष जी द्वारा सम्पादित शिक्षा की दोनों व्याख्याओं में औद्व्रजि के नाम से कई शिक्षा-वचन उद्धृत हैं। ये वचन ऋक्तन्त्र-व्याकरणान्तर्गत शिक्षा-प्रकरण के हैं। घोष जी ने न तो इन सूत्रों के आकर-स्थान का निर्देश किया और न इन्हें अनुपलब्ध मूल ही लिखा।

(३) शिक्षा की पञ्जिका-व्याख्या में भाष्यकार के नाम से एक वचन उद्धृत है :

तथा च भाष्यकारः—य एव लौकिकास्त एव वैदिकास्त एव तेषामर्था इति। (पृष्ठ ८)

यही वचन प्रकाश-व्याख्या (पृष्ठ २४) में महाभाष्य के नाम से उद्धृत है।

घोष जी से यह आशा करना कि वे इस वचन के मूल स्थान शाबर भाष्य (१।३) का निर्देश करते, अनुचित है, क्योंकि उन्हें इस शास्त्र का बोध ही नहीं है। हाँ, यदि वे परिश्रम करते तो इतना तो अवश्य लिख सकते थे कि यह वचन पातञ्जल महाभाष्य में कहीं उपलब्ध नहीं होता। महाभाष्य की पदसूची तो उनके ग्रन्थ-प्रकाशन से बहुत वर्ष पूर्व छप चुकी थी।

(४) इसी प्रकार प्रकाश-व्याख्या के प्रारम्भ (पृष्ठ २४) में 'बृहद्देवतायां शौनकः' लिखकर निम्नमुद्रित वचन उद्धृत है :

स्वरो वर्णोऽक्षरं मात्रा विनियोगार्थमेव च।
मन्त्रं जिज्ञासमानेन वेदितव्यं पदे पदे॥

यह श्लोक शौनकीय बृहद्देवता की मुद्रित शाखा[1] में उपलब्ध नहीं होता। घोष जी को चाहिए था कि वह फुटनोट में इस बात को सूचना देते, परन्तु उन्होंने इस पर कुछ नहीं लिखा।

(५) पाणिनीय शिक्षा की दोनों व्याख्याओं में 'शीर्षण्य' पद की सिद्धि के लिए 'शीर्षश्छन्दसि' (अष्टा० ६।१।६०) सूत्र से 'शीर्षन्' भाव का विधान किया है (पञ्जिका, पृष्ठ १३; प्रकाश, पृष्ठ २९)। यह सर्वथा अशुद्ध है। यहाँ 'ये च तद्धिते' (अष्टा० ६।१।६१) सूत्र से शोषंन् आदेश का विधान करना चाहिए। घोष जी ने दोनों व्याख्याकारों की इस भयङ्कर भूल की ओर कुछ भी निर्देश नहीं किया।

(६) घोष जी ने ग्रन्थ के अन्त में चान्द्र वर्ण-सूत्र भी छापे हैं। उनका पाठ अत्यन्त भ्रष्ट है। आश्चर्य की बात तो यह है कि घोष जी के ग्रन्थ से २० वर्ष पूर्व सन् १९१८ में डा० ब्रूनो लिबिच ने चान्द्र व्याकरण के अन्त में चान्द्र वर्ण-सूत्र प्रकाशित किये थे। उनका पाठ अत्यन्त शुद्ध है। शुद्ध पाठ के २० वर्ष पूर्व प्रकाशित हो जाने पर भी घोष जी का अशुद्ध पाठ मुद्रण करना बताता है कि उन्हें डा० ब्रूनो के द्वारा प्रकाशित चान्द्र वर्ण-सूत्र का ज्ञान ही नहीं था। किसी ग्रन्थ का सम्पादन करते हुए उसको २० वर्ष पूर्व प्रकाशित संस्करण से परिचित न होना सम्पादक का अक्षम्य प्रभाव है। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सम्पादक ने इस ग्रन्थ के सम्पादन में कुछ भी श्रम नहीं किया है।

आशा है, घोष जी पाणिनीय शिक्षा के द्वितीय संस्करण में पूर्व-लिखित सभी भूलों का परिमार्जन करेंगे और स्वामी दयानन्द-प्रकाशित शिक्षा-सूत्रों के विषय में उन्होंने जो भ्रम उत्पन्न किया है उसका स्वयं निराकरण करेंगे।

आत्मकथा-लेखन-विमर्ष

श्री नरेन्द्र नारायण सिहं, नन्दवारा, बैरगनियाँ (मुजफ्फरपुर)

[इस लेख के लेखक बिहार के एक लब्धकीर्त्ति वयोवृद्ध साहित्यसेवी हैं। गत वर्ष आप बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् द्वारा वयोवृद्ध साहित्य-पुरस्कार-प्रदान से सम्मानित हो चुके हैं। आपकी एकलिपि-विस्तार-परिषद्-सम्बन्धी संस्मरणात्मक रचना हम 'साहित्य' के इस वर्ष के प्रथम अंक में प्रकाशित कर चुके हैं। आपकी एक दूसरी संस्मरणात्मक रचना भी हम आगामी वर्ष के किसी अंक में प्रकाशित करेंगे। इस लेख पर हम विद्वानों के विचार आमंत्रित करते हैं।—सं०]

अपने जीवन के ७१ वर्ष पूरे करके अब मैंने ७२वें वर्ष में पदार्पण किया है। अपने शरीर की सामयिक दशा पर विचार करने से अब इस सीकर के सिन्धु में मिलने का शुभकाल समोप

---

१. बृहद्देवता के पाठों की अनेक शाखाएँ थीं।—ले०